श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 3

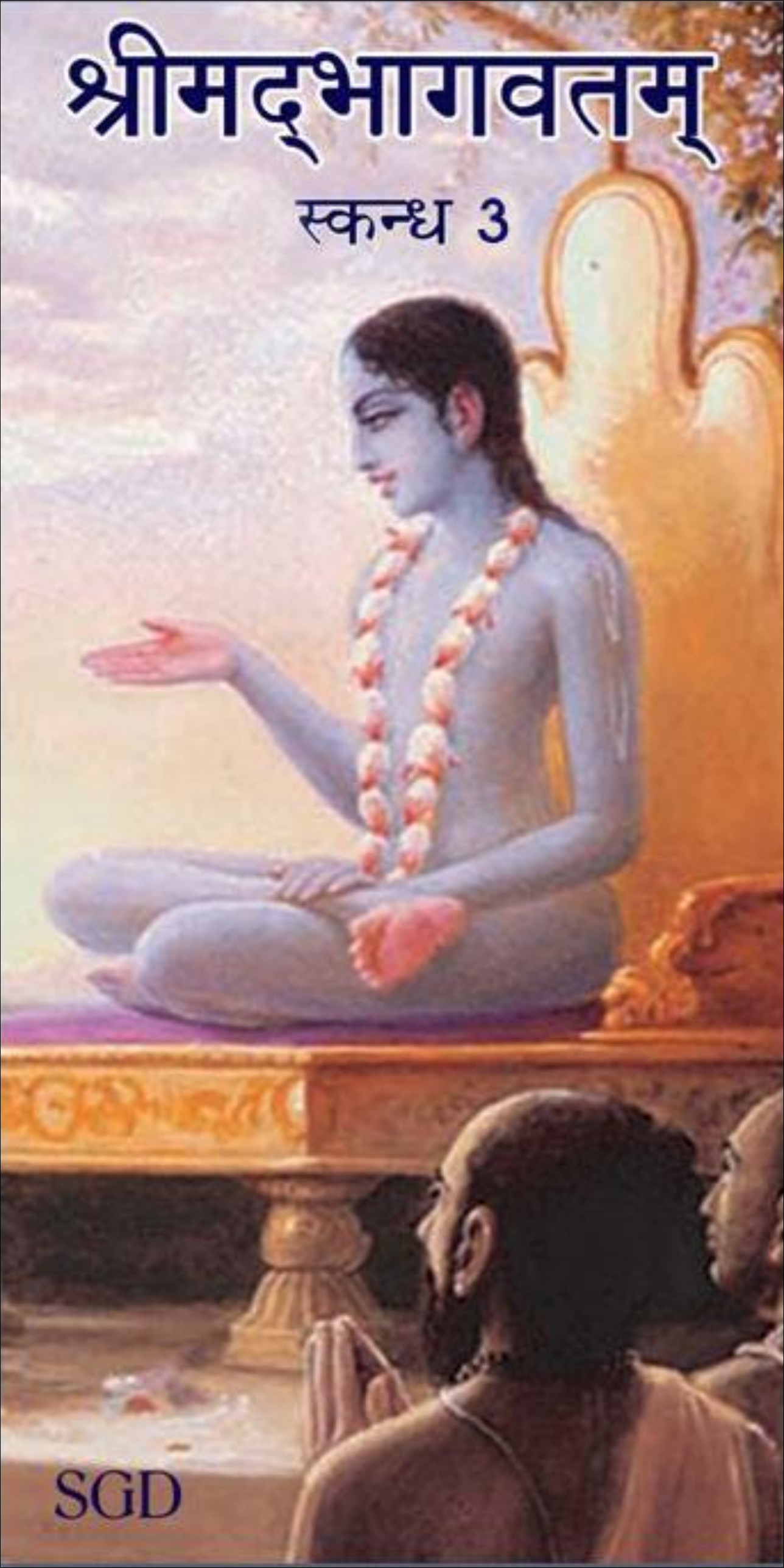

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 28

भक्ति साधना के लिए कपिल के आदेश

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: भगवान् ने कहा : हे माता, हे राजपुत्री, अब मैं आपको योग विधि बताऊँगा जिसका उद्देश्य मन को केन्द्रित करना है। इस विधि का अभ्यास करने से मनुष्य प्रसन्न रहकर परम सत्य के मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

श्लोक 2: मनुष्य को चाहिए कि वह यथाशक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करे और उन कर्मों को करने से

बचे, जो उसे नहीं करने हैं। उसे ईश्वर की कृपा से जो भी प्राप्त हो उसी से सन्तुष्ट रहना चाहिए और गुरु के चरणकमलों की पूजा करनी चाहिए।

श्लोक 3: मनुष्य को चाहिए कि परम्परागत धार्मिक प्रथाओं का परित्याग कर दे और उन प्रथाओं में अनुरक्त हो जो मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करने वाली हैं। उसे स्वल्प भोजन करना चाहिए और सदैव एकान्तवास करना चाहिए जिससे उसे जीवन की चरम सिद्धि प्राप्त हो सके।

श्लोक 4: मनुष्य को चाहिए कि अहिंसा तथा सत्य का आचरण करे, चोरी से बचे और अपने निर्वाह के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही संग्रह करे। वह विषयी जीवन से बचे, तपस्या करे, स्वच्छ रहे, वेदों का अध्ययन करे और भगवान् के परमस्वरूप की पूजा करे।

श्लोक 5: मनुष्य को इन विधियों अथवा अन्य किसी सही विधि से अपने दूषित तथा चंचल मन को वश में करना चाहिए, जिसे भौतिक भोग के द्वारा सदैव आकृष्ट किया जाता

रहता है और इस तरह अपने आप को भगवान् के चिन्तन में स्थिर करना चाहिए।

श्लोक 6: शरीर के भीतर के षटचक्रों में से किसी एक में प्राण तथा मन को स्थिर करना और इस प्रकार से अपने मन को भगवान् की दिव्य लीलाओं में केन्द्रित करना समाधि या मन का समाधान कहलाता है।

श्लोक 7: इन विधियों से या अन्य किसी सही विधि से मनुष्य को अपने दूषित तथा भौतिक भोग के द्वारा सदैव आकृष्ट होने वाले चंचल

मन को वश में करना चाहिए और इस तरह अपने आपको भगवान् के चिन्तन में स्थिर करना चाहिए।

श्लोक 8: अपने मन तथा आसनों को वश में करने के बाद मनुष्य को चाहिए कि किसी एकान्त तथा पवित्र स्थान में अपना आसन बिछा दे, उस पर शरीर को सीधा रखते हुए सुखपूर्वक आसीन होकर श्वास नियन्त्रण (प्राणायाम) का अभ्यास करे।

श्लोक 9: योगी को चाहिए कि प्राणवायु के मार्ग को निम्नलिखित

विधि से श्वास लेकर इस प्रकार से स्वच्छ करे—पहले बहुत गहरी श्वास अंदर ले, फिर उस श्वास को धारण किये रहे और अन्त में श्वास बाहर निकाल दे। या फिर इस विधि को उलट कर योगी पहले श्वास निकाले, फिर श्वास रोके रखे और अन्त में श्वास भीतर ले जाय। ऐसा इसलिए किया जाता है, जिससे मन स्थिर हो और बाहरी अवरोधों से मुक्त हो सके।

श्लोक 10: जो योगी ऐसे प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, वे तुरन्त समस्त मानसिक उद्वेगों से

उसी तरह मुक्त हो जाते हैं जिस प्रकार हवा की फुहार से अग्नि में रखा सोना सारी अशुद्धियों से रहित हो जाता है।

श्लोक 11: प्राणायाम विधि के अभ्यास से मनुष्य अपने शारीरिक दोषों को समूल नष्ट कर सकता है और अपने मन को एकाग्र करने से वह सारे पापकर्मों से मुक्त हो सकता है। इन्द्रियों को वश में करने से मनुष्य भौतिक संसर्ग से अपने को मुक्त कर सकता है और भगवान् का ध्यान

करने से वह भौतिक आसक्ति के तीनों गुणों से मुक्त हो सकता है।

श्लोक 12: जब इस योगाभ्यास से मन पूर्णतया शुद्ध हो जाय, तो मनुष्य को चाहिए कि अधखुलीं आखों से नाक के अग्रभाग में ध्यान को केन्द्रित करे और भगवान् के स्वरूप को देखे।

श्लोक 13: भगवान् का मुख उत्फुल्ल कमल के समान है और लाल लाल आँखें कमल के कोश (भीतरी भाग) के समान हैं। उनका श्यामल शरीर नील कमल की

पंखडिय़ों के समान है। वे अपने तीन हाथों में शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किये हैं।

श्लोक 14: उनकी कटि पीले पद्म-केशर के सदृश चमकदार वस्त्र से आवरित है। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न (श्वेत बालों का गुच्छा) है। उनके गले में चमचमाती कौस्तुभ मणि लटक रही है।

श्लोक 15: वे अपने गले में वनपुष्पों की आकर्षक माला भी धारण करते हैं जिसकी सुगन्धि से मतवाले भौंरों के झुंड माला के चारों ओर

गुंजार करते हैं। वे मोती की माला, मुकुट, एक जोड़ी कंकण, बाजूबंद तथा नूपुर से अत्युत्तम ढंग से सुसज्जित हैं।

श्लोक 16: उनकी कमर तथा कूल्हे पर करधनी पड़ी है और वे भक्तों के हृदय-कमल पर खड़े हुए हैं। वे देखने में अत्यन्त मोहक हैं और उनका शान्त स्वरूप देखने वाले भक्तों के नेत्रों को तथा आत्माओं को आनन्दित करने वाला है।

श्लोक 17: भगवान् शाश्वत रूप से अत्यन्त सुन्दर हैं और प्रत्येक

लोक के समस्तवासियों द्वारा पूजित हैं। वे चिर-युवा रहते हैं और अपने भक्तों को आशीष देने के लिए उत्सुक रहते हैं।

श्लोक 18: भगवान् का यश वन्दनीय है, क्योंकि उनका यश भक्तों के यश को बढ़ाने वाला है। अत: मनुष्य को चाहिए कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्तों का ध्यान करे। मनुष्य को तब तक भगवान् के शाश्वत रूप का ध्यान करना चाहिए जब तक मन स्थिर न हो जाय।

श्लोक 19: इस प्रकार भक्ति में सदैव तल्लीन रहकर योगी अपने अन्तर में भगवान् को खड़े रहते हुए, चलते, लेटे या बैठे हुए देखता है, क्योंकि परमेश्वर की लीलाएँ सुन्दर तथा आकर्षक होती हैं।

श्लोक 20: भगवान् के नित्य रूप में अपना मन स्थिर करते समय योगी को चाहिए कि वह भगवान् के समस्त अंगों पर एक ही साथ विचार न करके, भगवान् के एक-एक अंग पर मन को स्थिर करे।

श्लोक 21: भक्त को चाहिए कि सर्वप्रथम वह अपना मन भगवान् के चरणकमलों में केन्द्रित करे जो वज्र, अंकुश, ध्वजा तथा कमल चिन्हों से सुशोभित रहते हैं। सुन्दर माणिक से उनके नाखूनों की शोभा चन्द्रमण्डल से मिलती-जुलती है और हृदय के गहन तम को दूर करने वाली है।

श्लोक 22: पूज्य शिवजी भगवान् के चरणकमलों के प्रक्षालित जल से उत्पन्न गंगा नदी के पवित्र जल को अपने शिर पर धारण करके और भी पूज्य हो जाते हैं। भगवान् के

चरण उस वज्र के तुल्य हैं, जो ध्यान करने वाले भक्त के मन में संचित पाप के पहाड़ को ध्वस्त करने के लिए चलाया जाता है। अत: मनुष्य को दीर्घकाल तक भगवान् के चरणकमलों का ध्यान करना चाहिए।

श्लोक 23: योगी को चाहिए कि वह सभी देवताओं द्वारा पूजित तथा सर्वोपरि जीव ब्रह्मा की माता, ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मीजी के कार्यकलापों में अपने हृदय को स्थिर कर दे। वे सदैव दिव्य भगवान् के पाँवों तथा जंघाओं को चाँपती हुई देखी जा सकती हैं।

इस प्रकार वे सावधानी के साथ उनकी सेवा करती हैं।

श्लोक 24: फिर, ध्यान में योगी को अपना मन भगवान् की जाँघों पर स्थित करना चाहिए जो समस्त शक्ति की आगार हैं। वे अलसी के फूलों की कान्ति के समान सफेद-नीली हैं और जब भगवान् गरुड़ पर चढ़ते हैं, तो ये जाँघें अत्यन्त भव्य लगती है। योगी को चाहिए कि वह भगवान् के गोलाकार नितम्बों का ध्यान धरे, जो करधनी से घिरे हुए है और यह

करधनी भगवान् के एड़ी तक लटकते पीताम्बर पर टिकी हुई है।

श्लोक 25: तब योगी को चाहिए कि वह भगवान् के उदर के मध्य में स्थित चंद्रमा जैसी नाभि का ध्यान करे। उनकी नाभि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आधारशिला है जहाँ से समस्त लोकों से युक्त कमलनाल प्रकट हुआ। यह कमल आदि जीव ब्रह्मा का वासस्थान है। इसी तरह योगी को अपना मन भगवान् के स्तनाग्रों पर केन्द्रित करना चाहिए जो श्रेष्ठ मरकत मणि की जोड़ी के सदृश है और जो उनके वक्षस्थल

को अलंकृत करने वाली मोतीमाला की दुग्धधवल किरणों के कारण श्वेत प्रतीत होती है।

श्लोक 26: फिर योगी को भगवान् के वक्षस्थल का ध्यान करना चाहिए जो देवी महालक्ष्मी का आवास है। भगवान् का वक्षस्थल मन के लिए समस्त दिव्य आनन्द तथा नेत्रों को पूर्ण संतोष प्रदान करने वाला है। तब योगी को अपने मन में सम्पूर्ण विश्व द्वारा पूजित भगवान् की गर्दन का ध्यान धारण करना चाहिए। भगवान् की गर्दन उनके वक्षस्थल पर लटकने

वाले कौस्तुभ मणि की सुन्दरता को बढ़ाने वाली है।

श्लोक 27: इसके बाद योगी को भगवान् की चारों भुजाओं का ध्यान करना चाहिए जो प्रकृति के विभिन्न कार्यों का नियन्त्रण करने वाले देवताओं की समस्त शक्तियों के स्रोत हैं। फिर योगी चमचमाते उन आभूषणों पर मन केन्द्रित करे जो मन्दराचल के घूमने से रगड़ गये थे। उसे चाहिए कि भगवान् के चक्र (सुदर्शन चक्र) का भी ठीक से चिन्तन करे जो एक हजार आरों से तथा असह्य तेज से युक्त है।

साथ ही वह शंख का ध्यान करे जो उनकी कमल-सदृश हथेली में हंस सा प्रतीत होता है।

श्लोक 28: फिर योगी को चाहिए कि वह प्रभु की कौमोदकी नामक गदा का ध्यान करे जो उन्हें अत्यन्त प्रिय है। यह गदा शत्रुतापूर्ण सैनिक असुरों को चूर-चूर करने वाली है और उनके रक्त से सनी हुई है। योगी को भगवान् के गले में पड़ी हुई सुन्दर माला का भी ध्यान करना चाहिए जिस पर मधुर गुंजार करते हुए भौंरे मँडराते रहते हैं। भगवान् की मोती की माला का भी

ध्यान करना चाहिए जो उन शुद्ध आत्माओं की सूचक है, जो भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं।

श्लोक 29: तब योगी को भगवान् के कमल-सदृश मुखमण्डल का ध्यान करना चाहिए, जो इस जगत में उत्सुक भक्तों के लिए अनुकम्पावश अपने विभिन्न रूप प्रकट करते हैं। उनकी नाक अत्यन्त उन्नत है और उनके स्वच्छ गाल उनके मकराकृत कुण्डलों के हिलने से प्रकाशमान हो रहे हैं।

श्लोक 30: तब योगी भगवान् के सुन्दर मुखमण्डल का ध्यान करता है, जो घुँघराले बालों, कमल जैसे नेत्रों तथा नाचती भौंहों से सुशोभित है। इसकी शोभा (छटा) के आगे भौंरों से घिरा कमल तथा तैरती हुई मछलियों की जोड़ी मात खा जाती है।

श्लोक 31: योगी को चाहिए कि भगवान् के नेत्रों की कृपापूर्ण चितवन का ध्यान पूर्ण समर्पण भाव से करे, क्योंकि उससे भक्तों के अत्यन्त भयावह तीन प्रकार के कष्टों का शमन होता है। प्रेमभरी मुसकान से युक्त

उनकी चितवन विपुल प्रसाद से पूर्ण है।

श्लोक 32: इसी प्रकार योगी को भगवान् श्री हरि की उदार मुसकान का ध्यान करना चाहिए जो घोर शोक से उत्पन्न उनके अश्रुओं के समुद्र को सुखाने वाली है, जो उनको नमस्कार करते हैं। उसे भगवान् की चाप सदृश भौंहों का भी ध्यान करना चाहिए जो मुनियों की भलाई के लिए कामदेव को मोहने के लिए भगवान् की अन्तरंगा शक्ति से प्रकट है।

श्लोक 33: योगी को चाहिए कि प्रेम में डूबा हुआ भक्तिपूर्वक अपने अन्तरतम में भगवान् विष्णु के अट्टहास का ध्यान करे। उनका यह अट्टहास इतना मोहक है कि इसका सरलता से ध्यान किया जा सकता है। भगवान् के हँसते समय उनके छोटे-छोटे दाँत चमेली की कलियों जैसे दिखते हैं और उनके होठों की कान्ति के कारण गुलाबी प्रतीत होते हैं। एक बार अपना मन उनमें स्थिर करके, योगी को कुछ और देखने की कामना नहीं करनी चाहिए।

श्लोक 34: इस मार्ग का अनुसरण करते हुए धीरे-धीरे योगी में भगवान् हरि के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार भक्ति करते हुए अत्यधिक आनन्द के कारण शरीर में रोमांच होने लगता है और गहन प्रेम के कारण शरीर अश्रुओं की धारा से नहा जाता है। यहाँ तक कि धीरे-धीरे वह मन भी भौतिक कर्म से विमुख हो जाता है, जिसे योगी भगवान् को आकृष्ट करने के साधन रूप में प्रयुक्त करता है, जिस प्रकार मछली को आकृष्ट करने के लिये कँटिया प्रयुक्त की जाती है।

श्लोक 35: इस प्रकार जब मन समस्त भौतिक कल्मष से रहित और विषयों से विरक्त हो जाता है, तो यह दीपक की लौ के समान हो जाता है। उस समय मन वस्तुत: परमेश्वर जैसा हो जाता है और उनसे जुड़ा हुआ अनुभव किया जाता है, क्योंकि यह भौतिक गुणों के पारस्परिक प्रवाह से मुक्त हो जाता है।

श्लोक 36: इस प्रकार उच्चतम दिव्य अवस्था में स्थित मन समस्त कर्मफलों से निवृत्त होकर अपनी महिमा में स्थित हो जाता है, जो सुख

तथा दुख के सारे भौतिक बोध से परे है। उस समय योगी को परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध का बोध होता है। उसे पता चलता है कि सुख तथा दुख तथा उनकी अन्त:क्रियाएँ, जिन्हें वह अपने कारण समझता था, वास्तव में अविद्याजनित अहंकार के कारण थीं।

श्लोक 37: अपना असली स्वरूप प्राप्त कर लेने के कारण पूर्णतया सिद्ध जीव को इसका कोई बोध नहीं होता है कि यह भौतिक देह किस तरह हिल-डुल रही है या काम कर रही है, जिस तरह कि नशा किया

हुआ व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि वह अपने शरीर में वस्त्र धारण किये हैं अथवा नहीं।

श्लोक 38: ऐसे मुक्त योगी के इन्द्रियों सहित शरीर का भार भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं और यह शरीर तब तक कार्य करता रहता है जब तक इसके दैवाधीन कर्म समाप्त नहीं हो जाते। इस प्रकार अपनी स्वाभाविक स्थिति के प्रति जागरूक तथा योग की चरम सिद्धावस्था, समाधि, में स्थित मुक्त भक्त शरीर के गौण फलों को निजी कह कर स्वीकार नहीं

करता। इस प्रकार वह अपने शारीरिक कार्यकलापों को स्वप्न में सम्पन्न कार्यकलाप सदृश मानता है।

श्लोक 39: परिवार तथा सम्पत्ति के प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण मनुष्य पुत्र तथा सम्पत्ति को अपना मानने लगता है और भौतिक शरीर के प्रति स्नेह होने से वह सोचता है कि यह मेरा है। किन्तु वास्तव में जिस तरह मनुष्य समझ सकता है कि उसका परिवार तथा उसकी सम्पत्ति उससे पृथक् हैं, उसी

तरह मुक्त आत्मा समझ सकता है कि वह तथा उसका शरीर एक नहीं हैं।

श्लोक 40: प्रज्वलित अग्नि ज्वाला से, चिनगारी से तथा धुएँ से भिन्न है, यद्यपि ये सभी उससे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं, क्योकि वे एक ही प्रज्ज्वलित काष्ठ से उत्पन्न होते हैं।

श्लोक 41: परब्रह्म कहलाने वाला भगवान् द्रष्टा है। वह जीवात्मा या जीव से भिन्न है, जो इन्द्रियों, पंचतत्त्वों तथा चेतना से संयुक्त है।

श्लोक 42: योगी को चाहिए कि समस्त जीवों में उसी एक आत्मा को देखे, क्योंकि जो कुछ भी विद्यमान है, वह सब परमेश्वर की विभिन्न शक्तियों का प्राकट्य है। इस तरह से भक्त को चाहिए कि वह समस्त जीवों को बिना भेदभाव के देखे। यही परमात्मा का साक्षात्कार है।

श्लोक 43: जिस प्रकार अग्नि काष्ठ के विभिन्न प्रकारों में प्रकट होती है उसी प्रकार प्रकृति के गुणों की विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत

शुद्ध आत्मा अपने आपको विभिन्न शरीरों में प्रकट करता है।

श्लोक 44: इस प्रकार माया के दुर्लंघ्य सम्मोहन को जीतकर योगी स्वरूपसिद्ध स्थिति में रह सकता है। यह माया इस जगत में अपने आपको कार्य-कारण रूप में उपस्थित करती है, अत: इसे समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव